GOVT. OF INDIA- RNI NO. UPBIL/2014/56766
UGC Approved Care Listed Journal

ISSN 2348-2397

शोध सरिता

An International Multidisciplinary Quarterly
Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal

• Vol. 7 • Issue 27 • July to September 2020

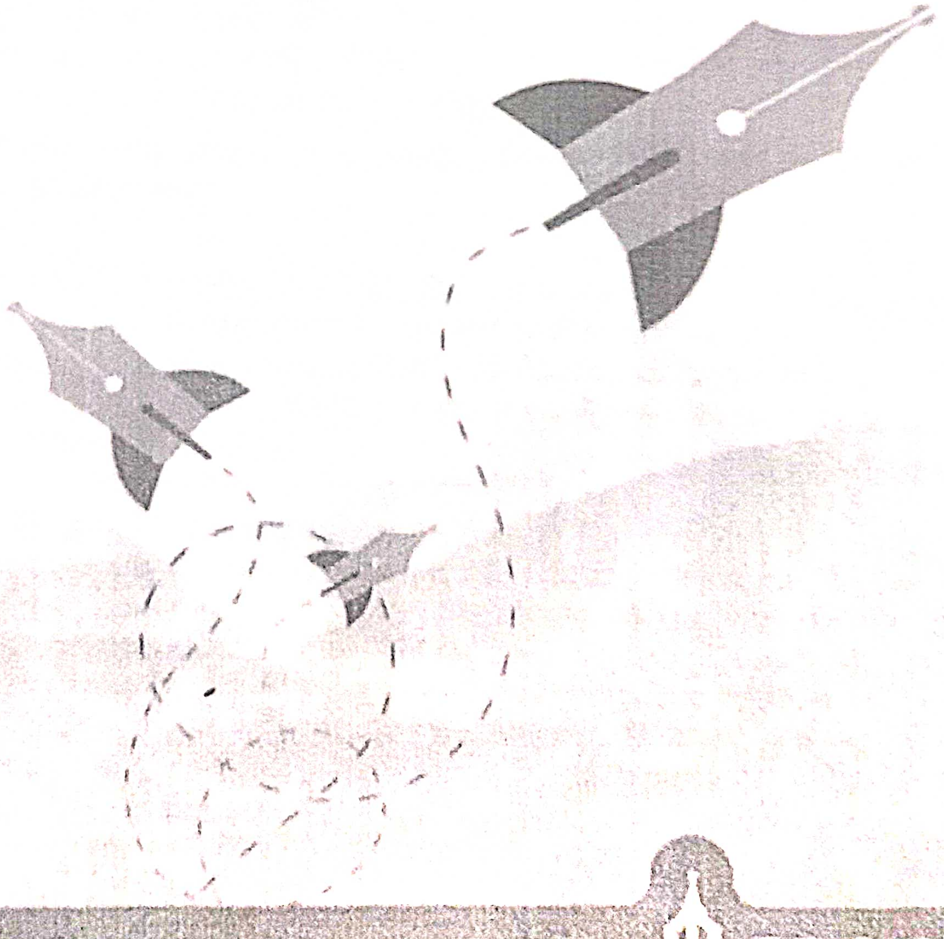

Editor in Chief
Dr. Vinay Kumar Sharma
D. Litt. - Gold Medalist

SANCHAR

नोट– यह लेख शोध सरिता के अंक जनवरी–मार्च 2021 में छपेगा

भारतीय शिक्षा प्रणाली–ज्ञान प्रदाता या पश्चिमी आधिपत्य

डॉ. अनुभा शुक्ला
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय,
राजा हरपाल सिंह पी.जी. कॉलेज,
सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश

हमारी भारतीय शिक्षा प्रणाली में ज्ञान भी उतना ही महत्त्व का है, जितना विज्ञान। अभी कोरोना काल में यहाँ कि आयुर्वेद चिकित्सा और वैज्ञानिक खोज इसके सशक्त उदाहरण हैं। वर्तमान नई शिक्षा नीति में 'सर्वजन हिताय' सम्प्रत्यय को साकार करने का प्रशंसनीय कार्य किया गया है। यहाँ की वर्तमान शिक्षा को पाश्चात्य आधिपत्य वाली शिक्षा कहा जाने लगा है; क्योंकि पाश्चात्य से तात्पर्य जो विकसित राष्ट्र हैं, वहाँ की शिक्षा प्रणाली तथा नवीन तकनालॉजी को वैज्ञानिक मानकर अन्धाधुन्ध प्रयोग करने से है। लेकिन हमें यह स्मरण रखना होगा कि भारत में धर्म और विज्ञान साथ–साथ चलता रहा है। परम्परा के साथ आधुनिकता, आदर्श के साथ न्याय तथा सोशल डिस्टेंसिंग नहीं, बल्कि सोशल संवेदनशीलता आवश्यक माना गया है। यहाँ बालक का बचपन भी चाहिए और उसका स्फूर्तियुक्त यौवन भी साथ ही अनुभव का श्रृंगार भी; सब कुछ ज्ञान प्रणाली में आवश्यक है। औचित्य और व्यवहार का सम्यक् सम्मेलन के बिना शिक्षा सूचना बनकर रह जाएगी और पाश्चात्य आधिपत्य हावी हो जाएगा। भारत में ज्ञान से ही विज्ञान उत्सर्जित है, इसलिए इसे अलग किया भी नहीं जा सकता है।

प्रमुख शब्द– *भारतीय शिक्षा प्रणाली, ज्ञान प्रदाता, पाश्चात्य आधिपत्य, परम्परा के साथ आधुनिकता, आदर्श के साथ न्याय।*

शिक्षा मानव समाज को प्रगतिशील बनाती है। शिक्षा से मनुष्य परिपक्व और प्रबुद्ध बनता है। शिक्षा का कोई भी स्वरूप, चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक सभी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने में सक्षम हैं। भारतीय शिक्षा मानव–जीवन के प्रत्येक पक्ष (आध्यात्मिक, चारित्रिक, सामाजिक एवं नैतिक) को आलोकित करती है। यहाँ तक कि शिक्षा में धर्म, दर्शन, साहित्य, कला और विज्ञान तथा आधुनिकता का अद्भुत संगम है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में राज्य, समाज और शिक्षक सभी का सम्मिलित सहयोग रहता है।

शिक्षा के लिए दो मूल शब्द हैं– विद्या और ज्ञान। विद्या के लिए कहा गया है– 'सा विद्या या विमुक्तये'। विमुक्ति का आध्यात्मिक अर्थ है, संसार से मुक्ति दिलाना। दूसरा अर्थ है– राग–द्वेष, ईर्ष्या, अहंकार इन सब विकारों से मुक्ति दिलाना। विद्वान तभी विद्वान होगा, जब वह विनयी होगा– 'विद्या विनयेन शोभते'। विद्या सीमाओं को पहचानना सीखाती है। शिक्षा से सम्बन्धित दूसरा शब्द है– ज्ञान। कहा गया है– 'ज्ञानं मनुजस्य तृतीयं नेत्रम्', ज्ञान मनुष्य का तृतीय नेत्र माना गया है। इसी से विवेकी प्रवृत्ति जागृत होती है। नॉलेज शब्द से बहुत अधिक अर्थ रखता है 'ज्ञान'। ज्ञान एक पर्याय 'बोध' है, जो बुद्धि से निकला है, दूसरा है 'अवगमन' अर्थात् गहराई में जानना। ज्ञान अस्तित्व का प्रमाण है। 'अहमस्मि, अहं जानामि', मुझे अपने अस्तित्व का बोध है तो ज्ञान है। अस्तित्व का अर्थ है 'सम्बद्धता', किसकी किससे सम्बद्धता ? 'मन का इन्द्रियों से सम्बद्धता'। 'Knowing is becoming' अर्थात् जानने का अर्थ होना ही है। शिक्षा को विवेकानन्द ने 'अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति' कहा है। शिक्षा मनुष्य को पूर्णता प्रदान करती है। जो वह हो सकता है, उसे वह होने की संभावना तलाशती है। श्री अरविन्द के अनुसार सच्ची शिक्षा आत्म–शिक्षा है। वह एक प्रयोजनमय प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति अपनी अंतरंग प्रकृति और उसकी

प्रेरणाओं के लक्ष्यों को प्राप्त करता है। भारतीय शिक्षा में 'स्वाभाविकता' का जबरदस्त समर्थन मिलता है। श्री अरविन्द के शब्दों में ''हम जिस शिक्षा की खोज में है, वह भारतीय आत्मा और आवश्यकता तथा स्वभाव व संस्कृति के उपयुक्त शिक्षा है, केवल ऐसी शिक्षा नहीं है, जो भूतकाल के प्रति ही आस्था रखती हो; बल्कि भारत की विकासमान आत्मा के प्रति, उसकी भावी आवश्यकताओं के प्रति, उसकी आत्मोत्पत्ति की महानता के प्रति और उसकी शाश्वत आत्मा के प्रति आस्था रखती है। शिक्षा का सच्चा आधार मानव–मस्तिष्क, शिशु, किशोर और वयस्क का अध्ययन है।

जब हम भारतीय शिक्षा प्रणाली का मूल्यांकन का प्रयत्न करते हैं, तब सहज ही उसके मूल्य व विविध पक्ष हमें आकृष्ट कर लेते हैं; क्योंकि हम उसी में पले–बढ़े हैं। ऐसी दशा में अनेक दृष्टिकोणों का अनुशीलन करके एक नया प्रकाश मिल सकता है, जो हमारे आत्म–निरीक्षण में सहायक होगा। पहली बात तो यह कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में ऐसा क्या था, जिसने भारत को 'विश्वगुरु' से सुशोभित किया ? ऐसी कौन–सी प्रणाली थी कि यहाँ से शिक्षा प्राप्त करने के लिए दूर देशों से भी विद्यार्थी आते थे ? यहाँ की शिक्षा–प्रणाली का आँकलन के लिए कई विदेशियों ने भारत की यात्रा किया। सर जान उड्रफ की पुस्तक ''क्या भारत सभ्य है ?'' में भले ही भारत के लिए अतिशय कटाक्ष मिलते हैं; लेकिन फिर भी उन्होंने यहाँ की परम्परा और सभ्यता को गम्भीरता से विचार करने पर बल दिया है। विदुषी निवेदिता की पुस्तक 'भारतीय जीवन का ताना–बाना' में भारतीयता के दृश्य दिखाई देते हैं और उससे बहुत कुछ उजागर होता है। महर्षि अरविन्द की रचना भारत का मस्तिष्क (दि ब्रेन ऑफ इंडिया) में भी बहुत सारगर्भित सामग्री मिलती है। उन्होंने एक बहुत सटीक प्रश्न उठाया है कि ''कितने लोग शिक्षा का मन्तव्य जानते हैं ?''

भारत की शिक्षा तथा शिक्षक और शिक्षण–प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्त धारणाएँ हैं। पहली भ्रान्त धारणा है कि शिक्षा देने का कार्य केवल ब्राह्मण ही करता था। जबकि ऐसे कई साक्ष्य मिलते हैं कि भारत में अनेक प्रकार की विद्यायें थीं और वह कौशलयुक्त थीं। इसलिए इसका संचालन एवं विद्या प्रदान करने का कार्य वही करते जो कुशल रीति से विद्या को धारण करते थे और योग्य पात्र–प्रदान करते थे। कई लोकशास्त्र थे, जिनके शिक्षक क्षत्रिय थे। धर्म की शिक्षा का जाति से कुछ लेना–देना नहीं था। धर्म की शिक्षा कई वैश्य शिक्षाविद् देते थे। वन में रहने वाले आदिवासी समाज के लोग भी औषधियों के गुणों की शिक्षा देते थे। कई व्यवसाय की शिक्षा व्यवसाय–कुशल व्यक्ति देते थे। उन व्यवसायों की शिक्षा उन्हें अपने वंशावली तथा कुल से मिलती थी और यह शिक्षा बहुलांश में वाचिक थी। इनके सीखने की विधि निश्चित और व्यावहारिक तथा प्रयोग आधारित थी। विद्यार्थियों को कठिन परिश्रम करके ही यह विद्या प्राप्त होती थी। अध्यापन ब्राह्मण का अधिकार नहीं कर्तव्य था। उसी प्रकार जिस प्रकार अध्ययन उसका कर्तव्य था। उसका काम केवल यज्ञ कराना नहीं, यज्ञ करना भी था। केवल दान लेना नहीं, दान देना भी था। अतः यहाँ यह भ्रान्त धारणा निरस्त की जा सकती है। शिक्षक एवं शिक्षार्थी निश्चित जाति के थे। वे दोनों ही विभिन्न जातियों से आते थे और सम्पूर्ण शिक्षण– प्रणाली में जाति का कोई स्थान नहीं था।

दूसरी भ्रान्त धारणा है कि शिक्षा सार्वभौमिक नहीं थी और अधिसंख्य लोग अशिक्षित थे। जबकि अंग्रेजों के द्वारा तैयार प्रतिवेदन से यह प्रमाणित होता है कि हिन्दुस्तान की साक्षरता और शिक्षा का स्तर यूरोप से कई गुना उन्नत एवं स्वायत्त था। इसमें स्वतन्त्र चिन्तन की प्रवणता कहीं अधिक थी। उसका कारण था कि अध्ययनशालायें केन्द्र व राज्य से शासित नहीं थीं। अध्यापक को उनकी पहचान उनके द्वारा निर्धारित पाठ्क्रम से थी। प्रत्येक पाठशाला की अपनी–अपनी अपूर्वता एवं पहचान थी।

तीसरी भ्रान्त धारणा है कि यहाँ वैज्ञानिक शिक्षा नहीं थी, न ही प्रयोगशाला आधारित शिक्षा थी। शिक्षा का पाठ्यक्रम सीमित था। जबकि सन्दर्भित प्रतिवेदन बताते हैं कि सम्पूर्ण पाठशाला ही प्रयोगशाला थी। जो विषय यहाँ उन दिनों पढ़ाये जाते थे, वे आक्सफोर्ड एवं कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में भी नहीं पढ़ाए जाते थे। पाठशाला से पढ़ा हुआ व्यक्ति अनेक कलाओं, शास्त्रों एवं जीवन के व्यवहार में पारंगत होते थे। वे शरीर, मन और बुद्धि तीनों से शक्तिसम्पन्न थे।

अध्यापक अध्ययन के लिए प्रेरणास्रोत थे और अध्ययन हमेशा ही उद्देश्य केन्द्रित था। अध्ययन में गतिशीलता एवं सोद्देश्यता अनिवार्य था। स्व की पहचान एवं स्वकर्म का महत्त्व दोनों की कामना अध्येताओं को रहती थी, इसलिए परम्पराएँ कभी रुढ़ियुक्त नहीं रही हैं। ज्ञान सम्पन्नता भारत की सदा से पहचान रही है, इसलिए यह प्रदाता भी है और वाहक भी।

शिक्षा के तीन प्रमुख घटक है – शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षण व्यवस्था। चाहे कोई भी देश, काल परिस्थिति हो, शिक्षा–प्रणाली की इन तीनों घटकों की गुणवत्ता पर ही अच्छा समाज तथा अच्छे नागरिक की संकल्पना की जा सकती है। जहाँ तक भारतीय शिक्षा प्रणाली का प्रश्न हैं, इसमें पूर्व वैदिककाल से वर्तमान तक बहुत सारे सकारात्मक और नकारात्मक परिवर्तन होते रहे हैं। प्राचीन वैदिक शिक्षा के समय से भारतीय शिक्षा प्रणाली ज्ञान–प्रदाता के रूप में रही है। तब शिक्षा का उद्देश्य स्वावलम्बन, विमुक्ति, अच्छा नागरिक बनने की प्रक्रिया एवं अनुशासन था। यह औपनिवेशिक काल के आरंभ तक दिखाई देते हैं। वैदिक कालीन शिक्षा–व्यवस्था में भौतिक सुख–सुविधाओं के स्थान पर ज्ञान, चरित्र–निर्माण एवं अनुशासन पर विशेष आग्रह दिखाई देता है। बल इस पर नहीं था कि विद्यार्थी का आसन कितना बहुमूल्य है; अपितु इस पर था कि उसने उसपर बैठकर कितनी शिक्षा ग्रहण की है। बौद्धिक परिपक्वता को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। अध्यापन की विधियाँ जो बाद के समय में और विदेशों में शोध और नवोन्मेष का विषय रहा है, उस पर बहुत पहले से ही खोज कर लिया गया था। प्रश्नोत्तर विधि, भ्रमण विधि, वाद–विवाद से ज्ञानार्जन, शिक्षण में वाचन, विषय का मनन, पाठ करना, व्याख्यान देना ये सभी शिक्षण की विधियों ने विदेशियों को अपनी ओर आकर्षित किया। व्यावहारिक और व्यावसायिक ज्ञान सहज ही शिक्षार्थी शिक्षा प्राप्त करते समय कर लेता था, जिसमें कर्म और धर्म की प्रधानता थी। गुरु को साक्षात् परम ब्रह्म की उपाधि दी गयी है। वह ब्रह्मा की तरह मानव का निर्माण करता है, विष्णु की तरह पोषण करता है, वही शिव की तरह उसके समस्त विकारों का नाश करता है। पूरी शिक्षण–व्यवस्था अध्यापक को केन्द्र में रखकर आयोजित की जाती थी। अध्यापक सभी उत्तरदायित्वों का निर्वाह बड़े मनोयोग से करता था। इसलिए ही आदरणीय माना जाता था।

आज जो रोजगारपरक शिक्षा का नारा बुलन्द किया जाता है, तब यह समस्या थी ही नहीं; क्योंकि तब वास्तविक शिक्षा थी, जो व्यक्ति को स्वयं में सम्पूर्ण सत्ता बना देती थी। शिक्षा राजा या केन्द्र की जिम्मेदारी नहीं, परिवार की जिम्मेदारी थी। घर का मुखिया का यह नैतिक दायित्व था कि वह अपने बालक के प्रथम शिक्षा की व्यवस्था करें। आज हम शिक्षा नहीं, राज्य की साक्षरता दर मापते हैं। आज से हजारों वर्ष पूर्व अश्वपति कैकेय ने यह उद्घोषणा की थी कि हमारे राज्य में कोई अशिक्षित नहीं है। उस समय की बात छोड़ दीजिए, अभी ब्रिटिशकाल में भारतीय शिक्षा प्रणाली के विषय में बंबई प्रेसीडेंसी के परिषद् के सदस्य प्रेंदुगास्ट ने 1821 में कहा कि ऐसा कोई गाँव उस समय नहीं था, जहाँ विद्यालय न हों। बड़े गाँवों में एक से अधिक विद्यालय थे। शिक्षा सुलभ और सस्ती थी। शिक्षा सहजता, किन्तु प्रभावी ढंग से दी जाती थी। इसी क्रम में जान एडम ने अपने प्रतिवेदन में बंगाल के ग्रामीण, विद्यालयों की प्रशंसा करते हुए कहा कि विद्यालयों में जो कुछ पढ़ाया जाता है, वह ज्ञान नागरिकों के दैनिक जीवन, व्यवसाय आदि को वास्तविक अर्थ में कुशलता प्रदान करने में सक्षम था। भारतीय विद्यालयों की तुलना स्कॉटलैण्ड के विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा से करते हुए कहा गया कि यह व्यावहारिक जीवन में इतनी उपयोगी नहीं हैं, जितनी भारतीय विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा। यह व्यावहारिक जीवन के अधिक समीप है। इंग्लैण्ड की प्रारम्भिक शिक्षा की अवधि दो वर्ष की थी, इसके विपरीत भारत में इस शिक्षा व्यवस्था की अवधि अपेक्षाकृत तीनगुनी थी। तत्कालीन प्रचलित शिक्षण– विधि इतनी प्रभावशाली थी कि बाद में इंग्लैण्ड में प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार में आश्चर्यजनक रूप से लाभदायक रही है। यहाँ की मानीटरिंग प्रणाली पूरे यूरोप के लिए लाभदायक सिद्ध हुई है। यहाँ की गुरु–शिष्य परम्परा (ऊँ सह नाववतु, सह नौभुनक्तु.....) पूरे विश्व के लिए मिशाल है।

पाश्चात्त्य प्रभाव ने भारतीय शिक्षा प्रणाली का न केवल क्षरण किया; अपितु, आघात भी पहुँचाया। मैकाले की शिक्षा नीति इसका उदाहरण है। वर्तमान शिक्षा पर इसका व्यापक प्रभाव दिखाई देता है। खासतौर पर उच्च शिक्षा में देखें, तो नई शक्तियों के अन्वेषण को उतना

प्रोत्साहन नहीं दिया गया, जितना पाश्चात्त्य देशों के विषयवस्तु को शोध–विषय बनाकर महत्त्व दिया जाता है। भारतेतर देशों में उपलब्ध ज्ञान की प्राप्ति कराने तथा उच्च शिक्षा का दायरा बन गया है; जबकि सत्य के अन्वेषण का हथियार शिक्षार्थी के हाथ में होना चाहिए। वर्तमान नई शिक्षा नीति में विज्ञान के साथ विज्ञानेतर विषयों को जोड़ने का प्रशंसनीय प्रयास किया गया है।

चाहे जो भी हो, हमारी भारतीय शिक्षा–प्रणाली में ज्ञान भी उतना ही महत्त्व का है, जितना विज्ञान। अभी कोरोना काल में यहाँ कि आयुर्वेद चिकित्सा और वैज्ञानिक खोज इसके सशक्त उदाहरण हैं। वर्तमान नई शिक्षा नीति में 'सर्वजन हिताय' सम्प्रत्यय को साकार करने का प्रशंसनीय कार्य किया गया है। यहाँ की वर्तमान शिक्षा को पाश्चात्त्य आधिपत्य वाली शिक्षा कहा जाने लगा है; क्योंकि पाश्चात्त्य से तात्पर्य जो विकसित राष्ट्र हैं, वहाँ की शिक्षा प्रणाली तथा नवीन तकनालॉजी को वैज्ञानिक मानकर अन्धाधुन्ध प्रयोग करने से है। लेकिन हमें यह स्मरण रखना होगा कि भारत में धर्म और विज्ञान साथ–साथ चलता रहा है। परम्परा के साथ आधुनिकता, आदर्श के साथ न्याय तथा सोशल डिस्टेंसिंग नहीं, बल्कि सोशल संवेदनशीलता आवश्यक माना गया है। यहाँ बालक का बचपन भी चाहिए और उसका स्फूर्तियुक्त यौवन भी साथ ही अनुभव का श्रृंगार भी; सब कुछ ज्ञान प्रणाली में आवश्यक है। औचित्य और व्यवहार का सम्यक् सम्मेलन के बिना शिक्षा सूचना बनकर रह जाएगी और पाश्चात्त्य आधिपत्य हावी हो जाएगा। भारत में ज्ञान से ही विज्ञान उत्सर्जित है, इसलिए इसे अलग किया भी नहीं जा सकता है। आज शिक्षार्थियों में नैराश्य और विषाद देखा जा रहा है, वह 'गाजर घास' की तरह पाश्चात्त्य से आ गया है। इसे उखाड़ फेंकना होगा और पुनः जो रामायण में कहा गया है– 'न विषादे मनः कार्य विषादो दोषक्तरः' अर्थात् मन को विषादग्रस्त नहीं बनाना चाहिए, विषाद में बहुत बड़ा दोष है। 'सर्वमेव शमस्तु नः' हमारे लिए सब कुछ यानि शिक्षा भी कल्याणकारी हो। 'अस्त्वं भयं मेऽस्तु' किसी प्रकार का भय न हो। चाहे हम जिस भी अवस्था में हों या किसी भी प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर रहे हों। ज्ञान को ब्रह्म कहा गया– 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'। यह भारत है, यहाँ ज्ञान ब्रह्म है, वह सबमें समाया है। जिसके पास जो रहता है, वह उसी का ही प्रदाता हो सकता है, अतः ज्ञान का क्यों नहीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. 'दिनकर' रामधारी सिंह : 'संस्कृति के चार अध्याय', लोकभारती प्रकाशन, 15–ए महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 1991।
2. त्रिपाठी, वशिष्ठ नारायण : 'प्रमुख धर्मों का तुलनात्मक विवेचना', अराधना प्रकाशन, कमच्छा, वाराणसी, 2014।
3. शर्मा रामनाथ डॉ. : 'समकालीन भारतीय दर्शन', मेरठ, 1976।
4. वेंकटाचलम् वि. प्रो. व तिवारी लक्ष्मी नारायण, 'विश्वदृष्टि' भाग–2, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1993।
5. अलतेकर, अनंत सदाशिव प्रो. : 'प्राचीन भारतीय शासन–पद्धति', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2001।
6. रावत, प्यारेलाल : 'भारतीय शिक्षा का इतिहास', आगरा।
7. जिनेन्द्रवाणी : 'महायात्रा', सर्वसेवासंघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।
8. मिश्रा, रविकुमार डॉ. : 'समाजशास्त्र : अवधारणात्मक विवेचन', मिश्रा ट्रेडिंग कार्पोरेशन, मैदागिन, वाराणसी।
9. शर्मा, आर.ए. डॉ. : 'अध्यापक शिक्षा एवं प्रशिक्षण तकनीकी', आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ–2015।
10. त्रिपाठी, वशिष्ठ नारायण डॉ. : 'श्री अरविन्द की हिरण्यमयी चिन्तन यात्रा', अराधना प्रकाशन, कमच्छा, वाराणसी 2011।
11. 'वैदिक स्वर', सरयूपारीय ब्राह्मण परिषद्, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–221005, फरवरी 2010।

12. 'शिक्षांक' : कल्याण संख्या–2, गीताप्रेस, गोरखपुर, जनवरी 1988।
13. श्री अरविन्द : 'भारतीयता का अग्रदूत', डॉ. कर्ण सिंह, अनुवादक– पद्मिनी मेनन, थामसन प्रेस, नई दिल्ली, 1970।
14. श्री अरविन्द : 'भारतीय संस्कृति के आधार', श्री अरविन्द सोसाइटी, पांडिचेरी, 1968।